

योग साधना के सोपान में मानव जीवन

डॉ० धर्मपाल

Teacher in Government High School Ramghar Samba Jammu and Kashmir, India

प्रस्तवना

पूर्व जन्म में किये गये पुण्यों के परिणाम स्वरूप ही मानव जीवन की प्राप्ति होती है अतः हम यह भी कह सकते हैं कि जिस किसी प्राणी को मानव जीवन मिला है वह उसके पूर्व में अर्जित किये गये गुणों का परिणाम है और वह पुण्य उसे योगसाधना पथ पर चलते हुए मिले होंगे इसमें किसी प्रकार का कोई सन्देह नहीं है। योग साधना हेतु महर्षि पतञ्जलि ने जिन अष्टांग साधनों का विवरण दिया है वह यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि रूप में अभिहित मिलते हैं।¹ लेकिन पातञ्जल सूत्र के अनेक टीकाकारों ने प्रसङ्गानुकूल योगसाधनों को अभ्यास वैराग्य क्रिया योग एवं अष्टांग योग के द्वारा ही स्वीकृत किया है जबकि स्वयं पतञ्जलि ने साधक भेद से साधना भेद भी स्वीकार किया है।² स्वयं महर्षि व्यास ने एवं उनके साथ-साथ भोजदेव³ तथा वाचस्पति मिश्र आदि ने साधकों की दो श्रेणियाँ मानी है। प्रथम वह जो पूर्व जन्म में उपाजित परिणाम स्वरूप योगारूढ़ होते हैं और दूसरे वह जो विषय वासनाओं से अग्रसर होते हुए भी योग मार्ग को अपनाने के इच्छुक होते हैं ऐसे इन दूसरे प्रकार के साधकों को आरुरुक्षु की संज्ञा दी जाती है। प्रथम प्रकार के लिये अभ्यास एवं वैराग्य रूप साधनों को अपनाने की सलाह वाचस्पति मिश्र ने दी है जबकि इहलौकिक जगत में विषय में प्रवृत्त हुए मानव के लिये अष्टांग योग के अतिरिक्त, क्रिया योग इत्यादि का चित्तवाने साधक अभ्यास एवं वैराग्य को सिद्ध करने में समर्थ नहीं होते हैं।⁴ इस प्रकार सामान्य मानव के लिए सर्वप्रथम अष्टांग योग ही योग साधना के सोपान माने जाते हैं। योग के प्रथम पाँच बहिरंग साधनों के माध्यम से जहाँ मानव शरीर की बाहरी शुचिता को प्राप्त करता है, वहीं अन्तिम तीन योगांगों के माध्यम से आन्तरिक शुचिता को। प्राणायाम एवं आसनों की सहायता से वह स्वास्थ्य संवर्धन करने के अतिरिक्त रोगों से निजात भी प्राप्त कर सकता है। मनुस्मृति में भी वर्णन मिलता है कि प्राणायाम से बढ़कर कोई तप नहीं है क्योंकि इसके माध्यम से मानव के सम्पूर्ण मल धुल जाते हैं एवं उसमें ज्ञान का उदय भी होता है। यथा—

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातुनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणं दह्यन्ते दोषा प्राणास्य निस्स्यहात्।⁵

प्राणायाम के अतिरिक्त योग साधना के सोपानों में मानव जीवन के लिए मनुस्मृति यम⁶ अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह⁷ तथा नियम से भी मुख्य मानते हैं उनका कहना है कि —

यमान् सेषेत सततं न नित्यं नियमान् बुधः।
यमान् पतत्य कुर्वाणे नियमान् केवलान् भजन।⁸

इस प्रकार यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार के बाद सामान्य मानव साधक अपने इष्ट (ईश्वर) के प्रति धारणा बनाते हुए उनके चिन्तन में ध्यान लगाने हेतु शान्त का वरण कर क्रमशः समाधिस्थ होता है, जबकि जिन साधकों ने अपने पूर्वजन्म में निरन्तर अभ्यास के द्वारा योग के प्रथम पाँच बहिरंग साधनों को सिद्ध कर लिया हो, उन्हें इस जन्म में यम, नियम आदि साधनों की आवश्यकता नहीं पड़ती। क्योंकि गरुड़—पुराण में वर्णन मिलता है कि शिशुपाल को स्मरण के अभ्यास मात्र से ही मोक्ष की प्राप्ति हो गई थी।⁹ अतएव उनके लिए अभ्यास एवं वैराग्य रूप साधन का विधान किया गया है।¹⁰

स्मरणीय है कि अभ्यास एवं वैराग्य दोनों का एक साथ सिद्ध होना चित्तवृत्ति निरोध के लिए अपेक्षित होता है, दोनों में एक के अनुष्ठान से विशेष कार्य नहीं होता, शायद इसलिए गीता में श्रीकृष्ण ने मन निग्रह के लिए दोनों उपायों के वरण का निर्देश मानव जीवन के लिए उपयुक्त समझा है। यथा —

असंशयं महाबाहो। मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।¹¹

अभ्यास वैराग्य एवं अष्टांग योग के अतिरिक्त क्रिया रूप में क्रमशः तीन तत्त्व अपेक्षित होते हैं तथा स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान।¹² लौकिक जीवन में सामान्य मानव जहाँ अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य के माध्यम से मर्यादाओं को समझने की परख संजोता है वहीं वह शोच, संतोष, तप, स्वाध्याय, एवं ईश्वर प्रणिधान के माध्यम से मानसिक शान्ति प्राप्त करने में समर्थ होता है। विभिन्न आसनों के माध्यम से जहाँ वह शारीरिक अङ्गों को पुष्ट बना सकता है वही प्राणायाम के माध्यम से शरीर के प्रमुख तीन अवयवों से वात पित एवं कफ में साम्यता ला सकता है और कुम्भक की गति को क्रमशः बढ़ा करके वह अपना आयुवर्धन भी कर सकता है। क्योंकि मानव को जो जीवन विधाता ने दिया है वह श्वास पर ही अवलम्बित है। प्रत्याहार के माध्यम से वह अपने मन को स्थिर करने के साथ-साथ भोग—प्रवृत्ति से क्रमशः निजात पा करके धारणा, ध्यान, एवं समाधि के माध्यम से आध्यात्मिक तप पर अग्रसर हो सकता है इस रूप में हम कह सकते हैं कि सामान्य मानव के लिए प्रथम—चार योग के अङ्ग उनके उद्देश्य प्राप्ति के सहयोगी बनते हैं जबकि अन्तिम चार योगिक साधन उनके आध्यात्ममार्ग में प्रवृत्त होने में अपनी भूमिका निभाते हैं विविध ग्रन्थों में योग साधना के सोपान के रूप में अनेकों तथ्य गिनाये गये हैं। यथा अभ्यास¹³ वैराग्य, अपर वैराग्य, यतमान, व्यतिरेक, एकेन्द्रिय वशीकार¹⁴ पर वैराग्य, स्वध्याय ईश्वर प्रणिधान¹⁵ एवं अष्टांग योग। जिसमें ईश्वर प्रणिधान को क्रिया योग¹⁶ अष्टांग¹⁷ योग दोनों के अन्तर्गत परिगणित किया गया है क्योंकि ईश्वर प्रणिधान के माध्यम से मानव में निराभिमानता का संचार होता है निराभिमानता के संचरण से मानव का

अन्ताकरण निष्कलमष तो होता है, उसमें ईश्वर के प्रति अटूट आस्था श्रद्धा एवं विश्वास की भावना दृढीभूत होती है और यही भावना मानव को योग साधना की चरमपरिणति अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति कराती है। इस प्रकार मानव जीवन योग साधना के सोपानों में क्रमशः आरूढ़ होकर जहाँ अपनी दैवान्दिनी का सफलतम ढंग से सम्पादन करने के सामर्थ्य अर्जित करता है वहीं मनस्तोष का अनुभव करते हुए मानसिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार की शान्ति भी प्राप्त उसे होती है इस रूप में योगसाधना के सोपान मानव जीवन के लिए आसीम रूप में हितकारी हैं।

सन्दर्भ

1. यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा समाध्यायोऽष्टावङ्गानि। यो० सू० 2/26
2. उदेदष्टः समाहित चित्तस्य योगः कथं व्युत्थितचित्तोऽपि योगयुक्तोः स्यात्। व्या० भा० पृ० 136
3. तदेव प्रथमे पादे समाहितचित्तस्य सोपायं योगमभिधाय व्युत्थित—चित्तस्यापि कथमुपायाभ्यासपूर्वको योगः स्वास्थ्यमुपायमुपयातीति तत्साधनानुष्ठानप्रतिपादनस्य क्रियायोगमह। भो० वृ० 133
4. अभ्यास वैराग्ये हि योगापायौ प्रथमे पाद उक्तौ न च तौ व्युत्थित चित्तस्य द्रागित्येव संभवत इति द्वितीयपादोपदेश्यानुपायानपेक्षते सत्त्व शुद्ध्यर्थम्। तत्त्ववैशारदी पृ० 136
5. मनु० 6/71
6. अहिंसास्तेयापरिग्रहाः यया। यो० सू० 2/30
7. शौचसंतोष तप स्वाध्यायेष्वरप्रणिधानानि नियम। यो० सू० 2/32
8. मनुस्मृति 4/204
9. आसन स्थान विध्यो न योगस्य प्रसाधका। शिशुपाल सिद्धिभाष स्मरणाभ्यास गौरवात्।। यो० वा० 1/37
10. न तू वक्ष्यमाणः क्रियायोगो वक्ष्यमाणानि योगवहिरङ्गानि—वाऽऽवश्यकानिः अभ्याय वैराग्याभ्यां तन्निरोध इतिसूतात्।। यो० सा० सं०, पृ० 22
11. श्री मभागवत गीता 6/35
12. तपः स्वाध्यायेष्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः। यो० सू० 2/1
13. तत्र स्थितौ यत्नोभ्यासः।
14. तथा च रागद्वेषशून्यस्य विषयसाक्षात्कारस्य योग्यतावशीकार संज्ञाख्यां वैराग्यमिति पर्थवसितम्। यो० वा०, पृ० 5
15. ईश्वर प्रणिधानं सर्वक्रियाणां परमगुरावर्षणं तत्फल सन्यासो। व्या० भा० पृ० 136
16. प्रथमपादोक्तप्रणि धानादि रिक्तमन्न प्रणिधानमाह सर्वक्रियाणामिति। यो० वा० 136
17. यो० वा०, पृ० 149 पर द्रष्टव्य